

बाल साहित्य में नैतिक मूल्यों का महत्व: एक विश्लेषणात्मक साहित्यिक अध्ययन

प्रहलाद सिंह अहलूवालिया, सम्पादक, शोधबोधालय, हिसार, हरियाणा

सारांश

बाल साहित्य केवल मनोरंजन की विधा नहीं है। वह बाल-मन के भावनात्मक, बौद्धिक और नैतिक निर्माण का सबसे सहज माध्यम भी है। यह शोध-पत्र विश्लेषणात्मक साहित्यिक पद्धति से दो प्रश्नों की पड़ताल करता है। पहला यह कि बाल साहित्य में नैतिक मूल्यों की उपस्थिति क्यों आवश्यक है। दूसरा यह कि वह किस रूप में सर्वाधिक प्रभावी होती है।

अध्ययन में जातक, पंचतंत्र, प्रेमचंद की कथा-परंपरा और गांधी के आत्मकथ्य के चयनित प्रसंगों का पाठ-विश्लेषण किया गया है। साथ ही मनोविज्ञान, साहित्य-चिंतन, शिक्षा-नीति और वैचारिक आलोचना के क्षेत्रों में हुए संबंधित शोधों की समीक्षा की गई है। निष्कर्ष बताते हैं कि नैतिक मूल्य तब सबसे अधिक स्थायी होते हैं जब वे उपदेश की भाषा में नहीं, पात्रों के अनुभव, द्वंद्व और चयन में अंतर्निहित हों। अध्ययन "अंतर्निहित नैतिकता" की अवधारणा और पाठ-मूल्यांकन की पाँच-प्रश्नीय कसौटी प्रस्तावित करता है।

कुंजी शब्द: बाल साहित्य, नैतिक मूल्य, आख्यान, चरित्र-निर्माण, हिंदी कथा-परंपरा, मूल्य-शिक्षा

1. प्रस्तावना

मनुष्य ने अर्थ की खोज कथा के माध्यम से की है। ब्रूनर ने मानवीय चिंतन के दो रूप बताए हैं, तर्क-प्रधान और आख्यान-प्रधान। उन्होंने स्पष्ट किया कि कथा वह ढाँचा है जिसमें अनुभव को अर्थ मिलता है [1]। बच्चे के लिए यह ढाँचा और भी निर्णायक है, क्योंकि उसके पास नैतिक धारणाओं की अमूर्त शब्दावली अभी विकसित नहीं होती। न्याय, दया, साहस और ईमानदारी उसके सामने पहले किसी पात्र के रूप में आते हैं और सिद्धांत के रूप में बाद में।

हिंदी में बाल साहित्य की परंपरा प्राचीन कथा-साहित्य से लेकर आधुनिक बाल कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और पत्रिकाओं तक फैली है। प्रकाश मनु ने लगभग सवा सौ वर्षों में रचे गए बाल साहित्य का कालक्रमानुसार अध्ययन करके हिंदी बाल साहित्य का पहला समग्र इतिहास प्रस्तुत किया है [2]। हरिकृष्ण देवसरे का 1968 का शोध-प्रबंध इस क्षेत्र का प्रारंभिक और आधारभूत शोध-कार्य माना जाता है [3]। दोनों ने हिंदी बाल साहित्य को गंभीर अकादमिक विमर्श का विषय बनाया।

नैतिक मूल्यों की चर्चा शिक्षा-नीतियों में भी निरंतर मिलती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा का उद्देश्य ऐसे अच्छे मनुष्यों का विकास बताती है जिनमें तर्कशक्ति के साथ करुणा, सहानुभूति, साहस, दृढ़ता और सुदृढ़ नैतिक आधार हों [4]। कोठारी आयोग (1964-66) ने सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा पर बल दिया था [5]। उससे पहले श्री प्रकाश समिति (1959) ने धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा के प्रश्न पर विचार किया था [6]। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 ने बच्चे को ज्ञान का सक्रिय निर्माता मानते हुए रटत-प्रणाली के स्थान पर अनुभव-आधारित सीखने की वकालत की [7]।

इन नीतिगत दस्तावेजों में मूल्यों पर बल तो है, पर यह प्रश्न प्रायः अनुत्तरित रह जाता है कि मूल्य बच्चे तक पहुँचेंगे कैसे। इसका सबसे स्वाभाविक उत्तर साहित्य है। बच्चे के लिए साहित्य कक्षा की बाध्यता नहीं, कल्पना का आमंत्रण है। किंतु यहाँ एक विरोधाभास

उपजता है। जब साहित्य पर नैतिक शिक्षा का बोझ अत्यधिक लाद दिया जाता है, तो उसकी कलात्मकता क्षीण होती है। और जब कलात्मकता के नाम पर मूल्यों से मुँह मोड़ लिया जाता है, तो बाल साहित्य अपनी सामाजिक भूमिका से कट जाता है। यह शोध-पत्र इसी तनाव को समझने और उसके विवेकपूर्ण समाधान की दिशा खोजने का प्रयास है।

2. शोध-समस्या, उद्देश्य एवं शोध-प्रश्न

शोध-समस्या: बाल साहित्य में नैतिक मूल्यों की भूमिका को लेकर हिंदी विमर्श में प्रायः दो छोर मिलते हैं। एक ओर उपदेशात्मक प्रवृत्ति है, जो हर रचना के अंत में "सीख" जोड़ना आवश्यक मानती है। दूसरी ओर शुद्ध आनंदवादी दृष्टि है, जो नैतिकता को साहित्य पर आरोपित बोझ समझती है। इन दोनों के बीच का विवेकसम्मत मार्ग स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं है।

उद्देश्य:

1. बाल साहित्य और नैतिक मूल्यों के अंतर्संबंध की सैद्धांतिक व्याख्या करना।
2. भारतीय कथा-परंपरा में नैतिक मूल्यों के प्रस्तुतीकरण के ढंग का विश्लेषण करना।
3. मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक, शैक्षिक और वैचारिक क्षेत्रों के संबंधित शोधों की समीक्षा करना।
4. नैतिक मूल्यों के प्रभावी और कलात्मक निरूपण के लिए एक विश्लेषणात्मक प्रारूप प्रस्तावित करना।

शोध-प्रश्न:

- बाल-विकास की दृष्टि से साहित्य के माध्यम से नैतिक मूल्यों का संचरण कैसे होता है?
- हिंदी और भारतीय कथा-परंपरा में नैतिकता का निरूपण किस रूप में मिलता है?
- विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने पर बाल साहित्य में नैतिकता की भूमिका के पक्ष और सीमाएँ क्या हैं?
- नैतिक संदेश और साहित्यिक सौंदर्य के बीच संतुलन का आधार क्या हो सकता है?

3. शोध-पद्धति

यह अध्ययन विश्लेषणात्मक साहित्यिक शोध की श्रेणी में आता है। इसमें प्रयोगशाला-आधारित आँकड़े एकत्र नहीं किए गए हैं। पद्धति के तीन चरण हैं।

पहला चरण, संबंधित शोध की समीक्षा। बाल साहित्य, कथा-मनोविज्ञान, नैतिक विकास और शिक्षा-नीति से जुड़े प्रकाशित ग्रंथों तथा शोध-लेखों का अध्ययन किया गया। सभी स्रोत 2023 से पूर्व के हैं। हिंदी ग्रंथों को यथासंभव प्राथमिकता दी गई है, क्योंकि विषय का सांस्कृतिक संदर्भ हिंदी-भाषी समाज से जुड़ा है। समीक्षा को सरल, पठनीय और तर्क-प्रधान रखा गया है। इसमें किसी यांत्रिक चयन-प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया गया।

दूसरा चरण, पाठ-विश्लेषण। जातक कथाओं, पंचतंत्र, प्रेमचंद की कहानी "ईदगाह" और गांधी की आत्मकथा के बाल्यकालीन प्रसंगों का विश्लेषण किया गया। इनका चयन इस आधार पर हुआ कि ये अलग-अलग कालखंडों की हैं, अलग-अलग नैतिक निरूपण-शैलियाँ अपनाती हैं और हिंदी-भाषी पाठक-समाज की साझा स्मृति का हिस्सा हैं। पाठ-पाठन में रोज़ेनब्लैट की "ट्रांजैक्शनल" दृष्टि का सहारा लिया गया है। इसके अनुसार अर्थ पाठ और पाठक के संवाद में बनता है। पाठक का पठन-भाव या तो सूचना-प्रधान होता है या सौंदर्यानुभव-प्रधान [8]।

तीसरा चरण, संश्लेषण। समीक्षा और पाठ-विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों की तुलना करके विभिन्न दृष्टिकोणों के बीच साझा आधार और मतभेद के बिंदु पहचाने गए और एक विश्लेषणात्मक प्रारूप विकसित किया गया।

सीमा: यह अध्ययन पाठ और पूर्व-शोध पर आधारित है। इसलिए इसके निष्कर्ष प्रत्यक्ष क्षेत्रीय प्रयोग का विकल्प नहीं हैं। उन्हें भावी अनुभवजन्य शोधों के लिए परिकल्पना के रूप में देखा जाना चाहिए।

4. सैद्धांतिक ढाँचा: अवधारणाएँ

4.1 बाल साहित्य की अवधारणा

बाल साहित्य वह रचना-जगत है जो बच्चे की आयु, रुचि, बोध-क्षमता और कल्पना को केंद्र में रखकर रचा जाता है। देवसरे और मनु दोनों की स्थापनाओं का साझा सार यह है कि बाल साहित्य बड़ों के साहित्य का सरलीकृत रूप नहीं, बल्कि अपनी स्वतंत्र सौंदर्य-दृष्टि वाली विधा है [2,3]। उसमें भाषा की तरलता, लय, जिज्ञासा और कल्पना का अनिवार्य स्थान है।

4.2 नैतिक मूल्य की अवधारणा

नैतिक मूल्य वे जीवन-आदर्श हैं जो व्यक्ति के आचरण को सामाजिक हित और आत्म-विवेक से जोड़ते हैं। सत्य, अहिंसा, करुणा, ईमानदारी, उत्तरदायित्व, सहयोग और न्याय-बोध इनके प्रमुख उदाहरण हैं। लिकोना ने चरित्र-शिक्षा में तीन घटक माने हैं: नैतिक ज्ञान, नैतिक भावना और नैतिक क्रिया [9]। यह त्रिविध विभाजन बाल साहित्य के लिए बहुत उपयोगी है। कहानी बच्चे को केवल यह नहीं बताती कि क्या सही है। वह सही के प्रति संवेदना जगाती है और सही करने की कल्पनात्मक रिहर्सल भी कराती है।

टैगोर ने शिक्षा की बड़ी विफलता यह मानी थी कि वह जीवन से कटकर केवल सूचना का बोझ बन जाती है। उनके अनुसार वास्तविक शिक्षा वह है जो पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करे [10]। यह दृष्टि बाल साहित्य में नैतिकता के प्रश्न को भी जीवंतता से जोड़ती है। मूल्य वही टिकते हैं जो जीवित अनुभव बन जाएँ।

4.3 नैतिक विकास के सिद्धांत

पियाजे ने बच्चों की नैतिक समझ के दो चरण बताए। पहले चरण में नियम बाहरी और अपरिवर्तनीय लगते हैं। अगले चरण में बच्चा नियमों को आपसी सहमति से बने और बदले जा सकने वाले ढाँचे के रूप में समझने लगता है [11]। कोलबर्ग ने इसे आगे बढ़ाकर तीन स्तरों और छह अवस्थाओं का सिद्धांत दिया। इसमें दंड-भय से आरंभ होकर सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांतों तक की यात्रा है [12]। इन सिद्धांतों का साहित्यिक निहितार्थ यह है कि छोटे बच्चे को "पाप-पुण्य" की स्पष्ट रेखाओं वाली कथा अच्छी लगती है। किशोरावस्था की ओर बढ़ते पाठक को द्वंद्व और अस्पष्टता वाली कथा चाहिए। अतः एक ही नैतिक निरूपण-शैली सभी आयु-वर्गों के लिए उपयुक्त नहीं है।

गिलिगन ने कोलबर्ग के न्याय-केंद्रित प्रारूप को अधूरा बताते हुए संबंध और देखभाल की नैतिकता को भी समान महत्व दिया [13]। नोडिंस ने इसी विचार को शिक्षा में देखभाल की नैतिकता के रूप में विकसित किया [14]। बाल साहित्य में माँ-बच्चे, दादी-पोते, मित्र और पशु-पक्षी के जो संबंध उभरते हैं, वे इसी देखभाल-नैतिकता के जीवंत रूप हैं।

बंदूरा का सामाजिक अधिगम सिद्धांत बताता है कि व्यक्ति दूसरों के व्यवहार के प्रेक्षण और अनुकरण से सीखता है [15]। उनके बोबो-डॉल प्रयोग में बच्चों ने आक्रामक वयस्क को देखने के बाद वैसा ही आक्रामक व्यवहार दोहराया [16]। साहित्य में यह अनुकरण प्रत्यक्ष नहीं, कल्पनात्मक होता है, और पात्र वह मॉडल बन जाता है जिसे बच्चा मन ही मन जीता है। हॉफमैन ने सहानुभूति को नैतिक विकास की नींव बताया है, क्योंकि दूसरे की पीड़ा से जुड़ाव ही परोपकारी व्यवहार की प्रेरणा बनता है [17]।

5. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: भारतीय कथा-परंपरा में नैतिक मूल्य

5.1 जातक और पंचतंत्र

भारतीय कथा-परंपरा में नैतिक शिक्षा का सर्वाधिक प्राचीन और व्यवस्थित रूप जातक कथाओं में मिलता है। ये बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाएँ हैं। पालि परंपरा में इनकी संख्या 547 मानी गई है और काँवेल के संपादन में इनका अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध है [18]। इन कथाओं में बोधिसत्व कभी हिरण, कभी हंस और कभी व्यापारी के रूप में उपस्थित होकर त्याग, क्षमा, सत्य और मैत्री जैसे गुणों का आदर्श रचते हैं। यहाँ नैतिकता पात्र की जीवन-यात्रा का परिणाम है, कोई बाहर से चिपकाया हुआ भाषण नहीं।

पंचतंत्र की संरचना भिन्न है। ओलिवेल के अनुसार यह ग्रंथ राजकुमारों को व्यावहारिक नीति और राजनय की शिक्षा देने के उद्देश्य से रचा गया था। इसके पाँच खंड हैं: मित्रभेद, मित्रसंप्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षितकारक [19]। इसकी नैतिकता आदर्शवादी उपदेश से अधिक लोक-व्यवहारजन्य विवेक है। अतः "मूल्य" के साथ "नीति" का अंतर समझना जरूरी है। पंचतंत्र कई बार चतुराई और सतर्कता को सराहता है, और यह नैतिक-दार्शनिक दृष्टि से जटिल प्रश्न खड़े करता है। इस पर आगे विचार किया गया है।

5.2 कथा का व्यक्तित्व-निर्माणकारी प्रभाव: गांधी का उदाहरण

कथा का बाल-मन पर स्थायी प्रभाव गांधी के आत्मकथ्य में स्पष्ट दिखता है। उन्होंने बाल्यकाल में पिता की भक्ति के लिए विख्यात श्रवण की कथा पढ़ी और हरिश्चंद्र का नाटक देखा। उनके अनुसार इन प्रसंगों ने उनके भीतर सत्य के प्रति गहरी निष्ठा का बीज बोया, और वे स्वयं को बार-बार हरिश्चंद्र के स्थान पर रखकर सोचते रहे [20]। यह प्रसंग पात्र-तादात्म्य के माध्यम से मूल्य-निर्माण का एक जीवंत, आत्म-प्रमाणित उदाहरण है।

5.3 आधुनिक हिंदी बाल साहित्य

आधुनिक हिंदी में नवजागरण-काल के लेखन में सुधार और शिक्षा की प्रवृत्ति प्रबल थी। रामचंद्र शुक्ल का साहित्येतिहास इस कालखंड की समाज-सुधारवादी चेतना का अभिलेख है [21]। कृष्ण कुमार ने औपनिवेशिक और राष्ट्रवादी शिक्षा-विमर्श की तुलना करते हुए दिखाया कि नैतिक शिक्षा और अनुशासन के प्रश्न सदैव राजनीतिक और सामाजिक उद्देश्यों से भी जुड़े रहे हैं [22]। इसी पृष्ठभूमि में बाल-पत्रिकाओं और बाल-कविता का विकास हुआ। मनु ने हिंदी बाल कविता का अलग इतिहास लिखकर दिखाया कि लोरियों, खेल-गीतों और उपदेश-कविताओं से आरंभ होकर बाल कविता धीरे-धीरे कल्पना, नटखटपन और विज्ञान-बोध की ओर बढ़ी [23]।

बीसवीं सदी के मध्य के बाद अनेक रचनाकारों ने अपने लेखन को उपदेश की सीधी रेखा से हटाकर बच्चे की मानवीय जटिलता से जोड़ा। इसी परिवर्तन ने बाल साहित्य में "सीख देने" और "अनुभव रचने" के बीच का वह विभाजन गढ़ा जिसकी चर्चा इस शोध-पत्र का केंद्र है।

6. संबंधित शोधों की समीक्षा, उनके परिणाम और निष्कर्ष

संबंधित शोधों को चार समूहों में रखकर देखना अधिक उपयोगी है। ये हैं मनोवैज्ञानिक-अनुभवजन्य अध्ययन, साहित्यिक-दार्शनिक चिंतन, आलोचनात्मक-वैचारिक अध्ययन और भारतीय शैक्षिक-नीतिगत अध्ययन।

6.1 मनोवैज्ञानिक-अनुभवजन्य अध्ययन

मार एवं सहयोगियों (2006) ने पाया कि गल्प-साहित्य (फ़िक्शन) से अधिक परिचित पाठकों में सहानुभूति और सामाजिक समझ के संकेतक बेहतर थे, जबकि केवल गैर-गल्प पठन में यह संबंध कमजोर या विपरीत दिखा [24]। मार और ओटले (2008) ने इसे सैद्धांतिक आधार देते हुए कहा कि गल्प सामाजिक अनुभव का अमूर्तन और अनुकरण है, जैसे उड़ान-सिम्युलेटर पायलट को अभ्यास कराता है [25]।

किड और कास्तानो (2013) के प्रयोगों में साहित्यिक गल्प पढ़ने के बाद प्रतिभागियों ने दूसरों की मानसिक अवस्था पहचानने वाले परीक्षणों में बेहतर प्रदर्शन किया [26]। किंतु पैनेरो एवं सहयोगियों (2016) के दोहराव-प्रयासों में यह प्रभाव अनेक प्रयोगों में उसी रूप में नहीं मिला [27]। किड और कास्तानो (2017) ने बाद में साहित्यिक गल्प से परिचय और मानसिक-अवस्था बोध के संबंध का दूसरा साक्ष्य प्रस्तुत किया [28]। यह वैज्ञानिक विवाद स्वयं एक महत्वपूर्ण शिक्षा देता है। साहित्य के प्रभाव पर बड़े दावे करने से पहले सावधानी चाहिए।

मम्पर और गेरिंग (2017) के मेटा-विश्लेषण में अवकाश-पठन और सामाजिक संज्ञान के बीच धनात्मक संबंध मिला, पर उसका आकार छोटा से मध्यम था [29]। डोडेल-फ्रेडर और तामिर (2018) के मेटा-विश्लेषण ने गल्प-पठन का सामाजिक संज्ञान पर प्रभाव धनात्मक पर छोटा पाया, लगभग 0.15 (हेजेस जी) [30]। इन दोनों परिणामों का संयुक्त अर्थ यह है कि साहित्य का नैतिक-सामाजिक प्रभाव वास्तविक है, पर चमत्कारी नहीं। यह धीमे, संचयी और संदर्भ-निर्भर रूप में काम करता है।

बाल और वेल्टकैम्प (2013) ने दिखाया कि गल्प का सहानुभूति पर प्रभाव तब अधिक हुआ जब पाठक कथा में भावनात्मक रूप से डूबा (ट्रांसपोर्टेड) था [31]। ग्रीन और ब्रॉक (2000) पहले ही यह स्थापित कर चुके थे कि कथा में तल्लीनता पाठक की धारणाओं को कथा के अनुरूप ढालने की शक्ति रखती है [32]। यह निष्कर्ष उपदेश बनाम अनुभव की बहस के लिए महत्वपूर्ण है। जो कथा पाठक को भीतर खींच ही न सके, उसमें नैतिक संदेश कितना भी अच्छा हो, प्रभावी नहीं होगा।

जिकिच एवं सहयोगियों (2009) ने चेखव की एक कहानी पढ़ने वाले प्रतिभागियों में स्व-रिपोर्ट किए गए व्यक्तित्व-लक्षणों में परिवर्तन पाया, और यह परिवर्तन भावनात्मक अनुभव की तीव्रता से जुड़ा था। तुलना-समूह ने गैर-कथात्मक निबंध पढ़ा था [33]। वेज़ाली एवं सहयोगियों (2015) ने "हैरी पॉटर" के पाठकों में आप्रवासी जैसे कलंकित माने जाने वाले समूहों के प्रति बेहतर रुख पाया। यह परिणाम तीन अध्ययनों में दोहराया गया और अच्छे पात्र से तादात्म्य तथा खल-पात्र से दूरी के तंत्र से जुड़ा पाया गया [34]।

इस समूह का सार: साहित्य सहानुभूति, परिप्रेक्ष्य-ग्रहण और पूर्वाग्रह-न्यूनन में सहायक हो सकता है। पर यह सहायता तल्लीनता, पाठ की गुणवत्ता और पाठक की आयु पर निर्भर है।

6.2 साहित्यिक-दार्शनिक चिंतन

बेटलहाइम (1976) ने परीकथाओं को बच्चे के आंतरिक भय, ईर्ष्या और असुरक्षा के प्रतीकात्मक समाधान के रूप में देखा और कहा कि वे बच्चे को नैतिक प्रश्नों से मनोवैज्ञानिक रूप से जूझने में मदद देती हैं [35]। यद्यपि इस मनोविश्लेषणात्मक पाठ की आलोचना भी हुई है, फिर भी कथा को बच्चे के मानसिक विकास का सहायक मानने की धारणा को इसने लोकप्रिय बनाया।

बूथ (1988) ने कथा को पाठक का "साथी" मानते हुए कल्प की नैतिकता की व्यवस्थित आलोचना का पक्ष रखा। उनके अनुसार हम जिन कथाओं के साथ समय बिताते हैं, वे हमारे मूल्य-बोध को गढ़ती हैं [36]। **नुसबॉम (1995)** ने साहित्यिक कल्पना को लोकतांत्रिक नागरिकता की तैयारी बताया, क्योंकि दूसरों के जीवन में प्रवेश करने की क्षमता न्यायपूर्ण सार्वजनिक विवेक की शर्त है [37]। **कोल्स (1989)** ने कथाओं को नैतिक कल्पना के पोषण का साधन कहा और यह आग्रह किया कि नैतिकता सिखाई नहीं जाती, कथाओं के साथ जी जाती है [38]।

हाकेमुल्डर (2000) ने साहित्य को "नैतिक प्रयोगशाला" कहते हुए ऐसे प्रयोग प्रस्तुत किए जिनमें साहित्य-पठन का सामाजिक धारणा और नैतिक आत्म-छवि पर प्रभाव जाँचा गया [39]। **निकोलायेवा (2014)** ने बाल साहित्य के संज्ञानात्मक अध्ययन में दिखाया कि कथा बच्चे को पात्रों के मन को पढ़ने, कारण-परिणाम समझने और भावनाओं के नामकरण का अभ्यास कराती है [40]।

इस समूह का सार: दार्शनिक-साहित्यिक चिंतन इस बात पर लगभग एकमत है कि साहित्य की नैतिक शक्ति उपदेश में नहीं, कल्पनात्मक सहभागिता में है।

6.3 आलोचनात्मक-वैचारिक अध्ययन

यह समूह एक असुविधाजनक प्रश्न उठाता है: बाल साहित्य में "नैतिकता" किसकी है और किसके हित में है?

ज़िप्स (1979) ने परीकथाओं को सामाजिक नियंत्रण और समाजीकरण के साधन के रूप में देखा और उनकी पारंपरिक सत्ता-संरचनाओं की आलोचना की [41]। **टाटार (1987)** ने ग्रिम बंधुओं की कहानियों के संपादन-इतिहास से दिखाया कि कैसे समय-समय पर पाठ में हिंसा, आज्ञाकारिता और लैंगिक भूमिकाओं के संदेश बदले या तीव्र किए गए [42]। **जैक्लीन रोज़ (1984)** ने कहा कि बाल साहित्य में वयस्क लेखक बच्चे की ओर से बोलता है, इसलिए बच्चे का "वास्तविक" स्वर हमेशा एक वयस्क-निर्मित कल्पना रहता है [43]।

हॉलिन्डेल (1988) ने बाल साहित्य की विचारधारा के स्तर बताए। पहला स्तर लेखक की स्पष्ट और घोषित मान्यताओं का है। दूसरा "निष्क्रिय" या अनजाने आग्रहों का है, जिन्हें लेखक स्वाभाविक मानकर लिख देता है [44]। **स्टीफेंस (1992)** ने भाषा और कथा-संरचना के भीतर छिपी विचारधाराओं को खोलकर पढ़ने का तरीका दिया [45]। **लेसनिक-ओबरस्टाइन (1994)** ने प्रश्न उठाया कि क्या समीक्षा जिस "बच्चे" की बात करती है, वह पाठ में गढ़ा हुआ बच्चा तो नहीं [46]।

इस समूह का सार: नैतिकता कभी तटस्थ नहीं होती। इसलिए बाल साहित्य में मूल्यों का प्रश्न केवल "मूल्य हों या नहीं" का नहीं, बल्कि "कौन-से मूल्य, किसके दृष्टिकोण से और किस शैली में" का भी है।

6.4 भारतीय शैक्षिक-नीतिगत एवं हिंदी अध्ययन

कृष्ण कुमार की "व्हाट इज वर्थ टीचिंग?" शिक्षा की सामग्री और पाठ्यपुस्तकों के चयन में निहित मूल्य-निर्णयों की आलोचनात्मक पड़ताल करती है और बताती है कि पाठ्य-सामग्री केवल ज्ञान नहीं, सामाजिक दृष्टि भी हस्तांतरित करती है [47]। राष्ट्रीय फ़ोकस समूह के शिक्षा-उद्देश्य संबंधी आधार-पत्र में मूल्यों को शिक्षा के सम्पूर्ण उद्देश्य-ढाँचे का अंग माना गया है [48]। भारतीय भाषाओं के शिक्षण पर आधार-पत्र भाषा-शिक्षण में साहित्य की भूमिका और बच्चे की अपनी भाषा के सम्मान पर बल देता है [49]। हिंदी में देवसरे और मनु के कार्य [2,3,23] इस समीक्षा को यह ऐतिहासिक आधार देते हैं कि हिंदी बाल साहित्य में सुधारवादी, आदर्शवादी और कल्पनाशील प्रवृत्तियाँ अलग-अलग कालखंडों में प्रबल रही हैं।

6.5 समीक्षा से निकले प्रमुख निष्कर्ष

चारों समूहों को साथ रखने पर पाँच निष्कर्ष उभरते हैं:

1. साहित्य का नैतिक-सामाजिक प्रभाव वास्तविक है, पर प्रायः छोटे से मध्यम आकार का और संदर्भ-निर्भर है [29,30]।
2. भावनात्मक तल्लीनता वह पुल है जिससे मूल्य पाठक तक पहुँचते हैं [31,32]।
3. पात्र-तादात्म्य और परिप्रेक्ष्य-ग्रहण सहानुभूति के प्रमुख तंत्र हैं [17,34]।
4. नैतिक निरूपण में विचारधारात्मक पक्षपात का खतरा सदैव रहता है [41-46]।
5. भारतीय नीति-दस्तावेज मूल्यों पर बल देते हैं, पर उन्हें साहित्यिक माध्यम से पहुँचाने की प्रक्रिया पर कम विस्तार से बात करते हैं [4-7,48,49]।

7. विश्लेषण: विभिन्न दृष्टिकोणों से बाल साहित्य में नैतिक मूल्य

7.1 मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बाल साहित्य का सबसे बड़ा योगदान नैतिक भावना का पोषण है। पियाजे और कोलबर्ग की रूपरेखा बताती है कि बच्चे की नैतिक समझ चरणबद्ध विकसित होती है [11,12]। इसलिए तीन-चार वर्ष के बच्चे की लोरी और नौ-दस वर्ष के बच्चे की साहसिक कथा में नैतिकता का स्वरूप अलग होना स्वाभाविक है। बंडूरा के मॉडलिंग सिद्धांत से यह भी स्पष्ट है कि कहानी के "नायक" का व्यवहार अनुकरणीय बनता है [15,16]। इसीलिए हिंसा या छल-कपट को महिमामंडित करने वाला पात्र नैतिक दृष्टि से जोखिम पैदा कर सकता है।

7.2 साहित्यिक-सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण

साहित्यिक दृष्टि का केंद्रीय प्रश्न यह है कि क्या नैतिकता रचना की कला को आहत करती है। रोजेनब्लैट के भेद के अनुसार यदि पाठक कथा को केवल "सीख निकालने" के लिए पढ़े तो वह सूचना-प्रधान पठन में चला जाता है। तब कथा का सौंदर्यानुभव खो जाता है [8]। इसलिए जिस रचना का अंत "इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है" जैसे वाक्य से होता है, वह प्रायः अपने ही प्रभाव को कम कर देती है। भारतीय रस-दृष्टि यहाँ सहायक है। रस की सिद्धि तब होती है जब पाठक अपने व्यक्तिगत संदर्भ से ऊपर उठकर भाव का साधारणीकरण अनुभव करे। नैतिकता यदि रस के भीतर घुली हो तो वह अधिक प्रभावशाली होती है।

7.3 शैक्षिक-नीतिगत दृष्टिकोण

नीतिगत दस्तावेजों की भाषा अपेक्षाओं की है: करुणा, सहानुभूति, साहस, विवेक [4]। कक्षा में यह अपेक्षा अक्सर "नैतिक शिक्षा" के अलग पीरियड में सिमट जाती है, जो बच्चे के लिए प्रायः उबाऊ अनुभव होता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 का अनुभव-आधारित और बाल-केंद्रित दृष्टिकोण [7] इस समस्या का समाधान संकेतित करता है, यानी मूल्यों को कहानी, कविता, नाटक और खेल जैसे जीवंत माध्यमों में पिरोना। इस दृष्टि से बाल साहित्य नैतिक शिक्षा का "अतिरिक्त साधन" नहीं, उसका "स्वाभाविक माध्यम" है।

7.4 समाजशास्त्रीय-वैचारिक दृष्टिकोण

आलोचनात्मक दृष्टि याद दिलाती है कि "अच्छा बच्चा" की परिभाषा समाज और सत्ता के हित से बनती है [41-43]। पारंपरिक कहानियों में आज्ञाकारिता, स्त्री-भूमिकाएँ, जाति और वर्ग-संबंध कई बार अनजाने रूप में स्थापित होते हैं [44,45]। उदाहरण के लिए, यदि किसी कथा में सदैव निर्धन पात्र विनम्र और धनवान पात्र दयालु दिखाया जाए, तो वह सामाजिक असमानता को स्वाभाविक ठहरा सकती है। अतः आधुनिक बाल साहित्य से अपेक्षा है कि वह समानता, गरिमा, पर्यावरण-संवेदना और लैंगिक न्याय जैसे मूल्यों को भी निरूपित करे, और उन्हें आदेश की तरह नहीं, अनुभव की तरह रखे।

7.5 भारतीय दार्शनिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण

भारतीय परंपरा में "धर्म" केवल कर्मकांड नहीं, कर्तव्य और औचित्य का व्यापक बोध है, और "नीति" उस धर्म को व्यवहार-जगत में उतारने की कला है। जातक कथाएँ धर्म के आदर्श की ओर संकेत करती हैं [18], जबकि पंचतंत्र नीति के यथार्थ की ओर [19]। दोनों बाल-मन के लिए आवश्यक हैं। आदर्श बच्चे को ऊँचा देखना सिखाता है और नीति उसे व्यवहार-जगत की जटिलता से परिचित कराती है। गांधी का उदाहरण [20] बताता है कि आदर्श-कथा जब पात्र-तादात्म्य पर टिकती है तो व्यक्तित्व की दिशा बदल सकती है। टैगोर की दृष्टि [10] याद दिलाती है कि यह प्रक्रिया आनंद और स्वतंत्रता के वातावरण में ही सर्वाधिक फलती है।

7.6 समकालीन माध्यम-परिवर्तन का दृष्टिकोण

आज बच्चे के आख्यान-संसार में पुस्तक के साथ एनीमेशन, वीडियो और खेल भी शामिल हैं। यह एक स्थापित तथ्य है कि दृश्य-श्रव्य माध्यम तात्कालिक भावनात्मक जुड़ाव जल्दी बना लेते हैं। इसलिए इन माध्यमों की कहानियाँ नैतिक दृष्टि से भी उतनी ही सोच-समझकर रची जानी चाहिए। इस बिंदु पर उपलब्ध साक्ष्य अभी विकासशील है। इसलिए यहाँ इसे भावी शोध के प्रश्न के रूप में रखा गया है, निष्कर्ष के रूप में नहीं। इतना कहा जा सकता है कि माध्यम बदलने से नैतिक कथा की मूल शर्तें नहीं बदलतीं: तल्लीनता, पात्र-तादात्म्य और अनुभव की प्रामाणिकता आज भी उतनी ही आवश्यक हैं।

8. चयनित पाठों का विश्लेषण

8.1 जातक: आदर्श का आख्यान

जातक कथाओं में नैतिकता का निरूपण तीन स्तरों पर होता है। पहला स्तर पात्र का चयन है। बोधिसत्व जब भी संकट में होता है, वह स्वहित के स्थान पर परहित चुनता है। दूसरा स्तर परिणाम है। कथा का अंत प्रायः पात्र के नैतिक चयन की पुष्टि करता है। तीसरा स्तर पूर्व-जन्म और वर्तमान का समानांतर है। कथा का श्रोता कथा-वाचक के माध्यम से अपने जीवन से जोड़ पाता है [18]। ये

कथाएँ छोटे बच्चों के नैतिक विकास के प्रारंभिक स्तर के अनुरूप हैं, जहाँ स्पष्ट आदर्श और सुस्पष्ट परिणाम बोधगम्य होते हैं [11,12]। सीमा यह है कि वे कभी-कभी नैतिक द्वंद्व की जटिलता को सरल बना देती हैं।

8.2 पंचतंत्र: विवेक का आख्यान

पंचतंत्र की विशेषता कथा के भीतर कथा की शैली और पशु-पात्रों के माध्यम से मानवीय स्वभाव का पर्यवेक्षण है [19]। "मित्रभेद" और "काकोलूकीय" जैसे खंड बताते हैं कि दुनिया में छल, अविश्वास और शत्रुता भी है, और उससे बचने के लिए विवेक चाहिए। यहाँ नैतिक विश्लेषण दो प्रश्न उठाता है। पहला यह कि क्या "चतुराई की जीत" वाली कथाएँ छोटे बच्चे को केवल सफलता को मूल्य मानने की ओर धकेलती हैं। दूसरा यह कि क्या आयु-उपयुक्त बातचीत के साथ वही कथाएँ बच्चे को यथार्थ और नैतिकता के अंतर को समझना भी सिखा सकती हैं। इस अध्ययन का मत है कि दूसरी संभावना अधिक वास्तविक है, बशर्ते कथा के बाद संवाद का अवसर हो, केवल "सीख" का सारांश नहीं।

8.3 प्रेमचंद की "ईदगाह": अंतर्निहित नैतिकता का उदाहरण

"ईदगाह" में पाँच-छह वर्ष का हामिद मेले में मिठाई और खिलौने के स्थान पर दादी के लिए चिमटा खरीदता है, ताकि रोटी सेंकते समय उनके हाथ न जलें [24]। कहानी कहीं भी "त्याग" या "ममता" शब्दों का उपदेश नहीं देती। नैतिक मूल्य तीन चीजों से उभरते हैं। पहली है हामिद की मनोवैज्ञानिक द्वंद्व-स्थिति, जहाँ खिलौनों का आकर्षण वास्तविक है। दूसरी है साथियों की सहज चुहल और उस पर हामिद का शांत तर्क। तीसरी है अंत में दादी की भावना, जहाँ आर्द्र स्नेह बिना घोषणा के प्रकट होता है। पाठक के मन में जो करुणा जन्म लेती है, वह "सीखी" हुई नहीं, "अनुभव" की हुई है। बंडूरा की भाषा में यह कल्पनात्मक अनुकरण है [15], और हॉफमैन की भाषा में सहानुभूति की सक्रियता [17]। इसी कारण यह कहानी बाल और वयस्क दोनों पाठकों के बीच जीवित बनी हुई है।

8.4 गांधी का आत्मकथ्य: प्रभाव का साक्ष्य

गांधी का बाल्यकालीन अनुभव [20] यह दर्शाता है कि नैतिक प्रभाव का निर्णायक तत्व उपदेश नहीं, तादात्म्य था। बालक मोहनदास ने कथा के "उपदेश" को नहीं पकड़ा। उसने स्वयं को कथा के नायक में रखकर देखा। इस उदाहरण की एक सीमा है, क्योंकि यह एक व्यक्ति का आत्म-कथन है और सामान्यीकरण का प्रमाण नहीं। पर यह साहित्यिक रूप से उतना ही अर्थपूर्ण है, क्योंकि यह वही तंत्र बताता है जिसे बाद के अनुभवजन्य शोध [31,34] मापने का प्रयास करते हैं।

9. चर्चा एवं प्रस्तावित प्रारूप

9.1 प्रमुख विश्लेषणात्मक निष्कर्ष

समीक्षा और पाठ-विश्लेषण मिलकर चार बातें स्थापित करते हैं।

पहली, बाल साहित्य में नैतिक मूल्य अपरिहार्य हैं, क्योंकि बच्चे की नैतिक कल्पना कथा के माध्यम से ही सबसे स्वाभाविक रूप से बनती है [1,38,40]। मूल्य-रहित बाल साहित्य असंभव है, क्योंकि हर कथा किसी न किसी मूल्य-दृष्टि को व्यक्त करती है [44]। प्रश्न केवल यह है कि वह दृष्टि सजग है या अनजानी।

दूसरी, प्रभावशीलता का निर्धारक तत्व निरूपण की शैली है। तल्लीनता और तादात्म्य पर आधारित निरूपण [31,32] उपदेशात्मक निरूपण से अधिक स्थायी प्रतीत होता है।

तीसरी, साहित्य का नैतिक प्रभाव संचयी और सीमित है [29,30]। इसलिए अपेक्षाएँ यथार्थवादी होनी चाहिए। कोई एक कहानी चरित्र नहीं गढ़ती, कहानियों का लंबा और विविध संग्रह गढ़ता है।

चौथी, नैतिकता का विचारधारात्मक आयाम अनिवार्य है [41-46], अतः लेखक, संपादक और शिक्षक तीनों को मूल्यों के चयन में आत्म-सजग रहना चाहिए।

9.2 प्रस्तावित अवधारणा: "अंतर्निहित नैतिकता"

उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर इस शोध-पत्र में "अंतर्निहित नैतिकता" की अवधारणा प्रस्तावित है। इसका आशय यह है कि नैतिक मूल्य रचना के अंत में जोड़ा गया निष्कर्ष नहीं, बल्कि पात्र के चयन, परिस्थिति के द्वंद्व और घटना के परिणाम में बुना हुआ सूत्र होता है। यह अवधारणा निम्नलिखित पाँच विश्लेषणात्मक प्रस्थापनाओं पर टिकी है:

1. अनुभव-प्रथमता: पाठक को पहले अनुभव मिले और अर्थ-निर्माण का अवसर बाद में।
2. पात्र-केंद्रित नैतिकता: मूल्य किसी "सूक्ति" से नहीं, पात्र की मानवीय दुविधा से जन्म लें।
3. संवाद-खुलापन: कथा ऐसी हो कि बच्चा कथा के बाद प्रश्न पूछ सके और अपनी राय बना सके।
4. रस-अखंडता: नैतिक संदेश कथा के सौंदर्य को खंडित न करे।
5. समावेशी मूल्य-दृष्टि: कथा किसी एक वर्ग, लिंग या समुदाय के आग्रह को स्वाभाविक बनाकर न रखे।

9.3 पाँच-प्रश्नीय पाठ-मूल्यांकन कसौटी

शिक्षक, अभिभावक, संपादक और आलोचक किसी बाल रचना की नैतिक गुणवत्ता जाँचने के लिए पाँच प्रश्न पूछ सकते हैं:

- क्या नैतिक मूल्य पात्र के कर्म से प्रकट होता है, या केवल कथावाचक की घोषणा से?
- क्या पाठक को कथा में डूबने का अवसर मिलता है?
- क्या कथा में वास्तविक द्वंद्व है, या उत्तर पहले से तय है?
- क्या कथा किसी समूह के प्रति अनजाने पूर्वाग्रह को पोषित करती है?
- क्या कथा के बाद बच्चे के लिए सोचने और प्रश्न पूछने की जगह बचती है?

इस कसौटी की वैधता को भविष्य में अनुभवजन्य रूप से परखा जा सकता है। फिलहाल यह एक सैद्धांतिक-विश्लेषणात्मक उपकरण के रूप में प्रस्तुत है।

9.4 उपदेश बनाम अनुभव: संतुलन की व्याख्या

"उपदेश बनाम अनुभव" की बहस में इस शोध का मत यह है कि उपदेश को पूर्णतः त्याज्य मानना भी अतिवाद है। बहुत छोटे बच्चों के लिए, जिनकी अमूर्त सोच अभी विकसित हो रही है [11], सरल और स्पष्ट नैतिक कथाएँ उपयोगी हैं। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है,

कथा की नैतिक जटिलता भी बढ़नी चाहिए [12]। अतः उपयुक्त सूत्र यह है कि आयु जितनी कम हो, नैतिक रेखा उतनी स्पष्ट रहे। आयु जितनी बढ़े, उतना ही अधिक द्वंद्व, अस्पष्टता और पाठक की व्याख्या के लिए स्थान रखा जाए।

10. सुझाव

रचनाकारों के लिए: कथा को संदेश का वाहन नहीं, अनुभव का संसार बनाएँ। अंत में नैतिक सारांश जोड़ने के प्रलोभन से बचें और पात्र को निर्णय लेने दें।

शिक्षकों के लिए: कहानी के बाद "इससे क्या सीख मिली?" पूछने के स्थान पर "तुम होते तो क्या करते?" जैसे प्रश्न पूछें। इससे बच्चे की नैतिक कल्पना सक्रिय होती है, जो कोल्स के अनुसार नैतिक शिक्षा का सार है [38]।

अभिभावकों के लिए: बच्चे के साथ साझा पठन को बातचीत का अवसर बनाएँ और बच्चे की व्याख्या को गंभीरता से सुनें।

संपादकों और प्रकाशकों के लिए: प्रकाशन-पूर्व मूल्यांकन में पाठ की विचारधारात्मक निहितार्थों की जाँच शामिल करें [44,45]।

नीति-निर्माताओं के लिए: पाठ्यचर्या में साहित्य-आधारित मूल्य-शिक्षा के लिए स्पष्ट, पर लचीले दिशानिर्देश विकसित करें, जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भावना के अनुरूप हों [4]।

भावी शोधकर्ताओं के लिए: हिंदी बाल साहित्य पर प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन आवश्यक हैं। इनमें विभिन्न आयु-वर्गों पर कथा-निरूपण की भिन्न शैलियों के प्रभाव, पाँच-प्रश्नीय कसौटी की वैधता, और डिजिटल माध्यम की कथाओं की नैतिक भूमिका के प्रश्न शामिल किए जा सकते हैं।

11. निष्कर्ष

बाल साहित्य में नैतिक मूल्यों का महत्व इस तथ्य में निहित है कि बच्चे के लिए कथा केवल कल्पना का क्षेत्र नहीं, नैतिक अभ्यास की सबसे कोमल भूमि है। जातक की आदर्श-कथाओं, पंचतंत्र की विवेक-कथाओं, प्रेमचंद की संवेदनशील कथा-भाषा और गांधी के आत्म-साक्ष्य से एक साझा बात उभरती है। मूल्य वहाँ टिकते हैं जहाँ पाठक पात्र के साथ जीता है, केवल उसे सुनता नहीं। आधुनिक शोध यह भी चेताते हैं कि साहित्य का नैतिक प्रभाव चमत्कारी नहीं, धीमा और संचयी होता है। साथ ही वैचारिक आलोचना बताती है कि नैतिकता के चयन में सजगता आवश्यक है।

इस अध्ययन की केंद्रीय स्थापना यह है कि श्रेष्ठ बाल साहित्य वह है जिसमें नैतिकता अंतर्निहित हो और रस-अखंडता के साथ समावेशी दृष्टि भी बनी रहे। नैतिकता तब सबसे प्रभावी होती है जब वह उपदेश की तरह सुनाई न दे और अनुभव की तरह बच्चे के भीतर उतर जाए। बाल साहित्य का दायित्व बच्चे को केवल "अच्छा" बनने का आदेश देना नहीं, अच्छाई की कल्पना करने की क्षमता देना है।

संदर्भ

1. Bruner J. Actual Minds, Possible Worlds. Cambridge (MA): Harvard University Press; 1986.
2. मनु प्रकाश. हिंदी बाल साहित्य का इतिहास. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन; 2018.

3. देवसरे हरिकृष्ण. हिंदी बालसाहित्य: एक अध्ययन [शोध प्रबंध]. जबलपुर: जबलपुर विश्वविद्यालय; 1968.
4. Ministry of Human Resource Development, Government of India. National Education Policy 2020. New Delhi: Government of India; 2020.
5. Ministry of Education, Government of India. Education and National Development: Report of the Education Commission 1964–66. New Delhi: Government of India; 1966.
6. Ministry of Education, Government of India. Report of the Committee on Religious and Moral Instruction. New Delhi: Government of India; 1959.
7. National Council of Educational Research and Training. National Curriculum Framework 2005. New Delhi: NCERT; 2005.
8. Rosenblatt LM. The Reader, the Text, the Poem: The Transactional Theory of the Literary Work. Carbondale: Southern Illinois University Press; 1978.
9. Lickona T. Educating for Character: How Our Schools Can Teach Respect and Responsibility. New York: Bantam Books; 1991.
10. Tagore R. Personality. London: Macmillan; 1917.
11. Piaget J. The Moral Judgment of the Child. London: Kegan Paul, Trench, Trubner; 1932.
12. Kohlberg L. Essays on Moral Development. Vol. 1, The Philosophy of Moral Development. San Francisco: Harper & Row; 1981.
13. Gilligan C. In a Different Voice: Psychological Theory and Women's Development. Cambridge (MA): Harvard University Press; 1982.
14. Noddings N. Caring: A Feminine Approach to Ethics and Moral Education. Berkeley: University of California Press; 1984.
15. Bandura A. Social Learning Theory. Englewood Cliffs (NJ): Prentice Hall; 1977.
16. Bandura A, Ross D, Ross SA. Transmission of aggression through imitation of aggressive models. J Abnorm Soc Psychol. 1961;63(3):575-82.
17. Hoffman ML. Empathy and Moral Development: Implications for Caring and Justice. Cambridge: Cambridge University Press; 2000.
18. Cowell EB, editor. The Jātaka or Stories of the Buddha's Former Births. Cambridge: Cambridge University Press; 1895–1907.
19. Olivelle P, translator. The Pāṇcatantra: The Book of India's Folk Wisdom. Oxford: Oxford University Press; 1997.
20. गांधी मोहनदास करमचंद. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर; 1927.
21. शुक्ल रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. काशी: नागरी प्रचारिणी सभा; 1929.
22. Kumar K. The Political Agenda of Education: A Study of Colonialist and Nationalist Ideas. New Delhi: Sage Publications; 1991.
23. मनु प्रकाश. हिंदी बाल कविता का इतिहास. दिल्ली: मेधा बुक्स; 2003.
24. प्रेमचंद. ईदगाह. चाँद. 1933.
25. Mar RA, Oatley K, Hirsh J, dela Paz J, Peterson JB. Bookworms versus nerds: exposure to fiction versus non-fiction, divergent associations with social ability, and the simulation of fictional social worlds. J Res Pers. 2006;40(5):694-712.

26. Mar RA, Oatley K. The function of fiction is the abstraction and simulation of social experience. *Perspect Psychol Sci.* 2008;3(3):173-92.
27. Kidd DC, Castano E. Reading literary fiction improves theory of mind. *Science.* 2013;342(6156):377-80.
28. Panero ME, Weisberg DS, Black J, Goldstein TR, Barnes JL, Brownell H, et al. Does reading a single passage of literary fiction really improve theory of mind? An attempt at replication. *J Pers Soc Psychol.* 2016;111(5):e46-e54.
29. Kidd D, Castano E. Different stories: how levels of familiarity with literary and genre fiction relate to mentalizing. *Psychol Aesthet Creat Arts.* 2017;11(4):474-86.
30. Mumper ML, Gerrig RJ. Leisure reading and social cognition: a meta-analysis. *Psychol Aesthet Creat Arts.* 2017;11(1):109-20.
31. Dodell-Feder D, Tamir DI. Fiction reading has a small positive impact on social cognition: a meta-analysis. *J Exp Psychol Gen.* 2018;147(11):1713-27.
32. Bal PM, Veltkamp M. How does fiction reading influence empathy? An experimental investigation on the role of emotional transportation. *PLoS One.* 2013;8(1):e55341.
33. Green MC, Brock TC. The role of transportation in the persuasiveness of public narratives. *J Pers Soc Psychol.* 2000;79(5):701-21.
34. Djikic M, Oatley K, Zoeterman S, Peterson JB. On being moved by art: how reading fiction transforms the self. *Creat Res J.* 2009;21(1):24-9.
35. Vezzali L, Stathi S, Giovannini D, Capozza D, Trifiletti E. The greatest magic of Harry Potter: reducing prejudice. *J Appl Soc Psychol.* 2015;45(2):105-21.
36. Bettelheim B. *The Uses of Enchantment: The Meaning and Importance of Fairy Tales.* New York: Knopf; 1976.
37. Booth WC. *The Company We Keep: An Ethics of Fiction.* Berkeley: University of California Press; 1988.
38. Nussbaum MC. *Poetic Justice: The Literary Imagination and Public Life.* Boston: Beacon Press; 1995.
39. Coles R. *The Call of Stories: Teaching and the Moral Imagination.* Boston: Houghton Mifflin; 1989.
40. Hakemulder J. *The Moral Laboratory: Experiments Examining the Effects of Reading Literature on Social Perception and Moral Self-Concept.* Amsterdam: John Benjamins; 2000.
41. Nikolajeva M. *Reading for Learning: Cognitive Approaches to Children's Literature.* Amsterdam: John Benjamins; 2014.
42. Zipes J. *Breaking the Magic Spell: Radical Theories of Folk and Fairy Tales.* London: Heinemann; 1979.
43. Tatar M. *The Hard Facts of the Grimms' Fairy Tales.* Princeton: Princeton University Press; 1987.
44. Rose J. *The Case of Peter Pan, or the Impossibility of Children's Fiction.* London: Macmillan; 1984.
45. Hollindale P. Ideology and the children's book. *Signal.* 1988;55:3-22.
46. Stephens J. *Language and Ideology in Children's Fiction.* London: Longman; 1992.
47. Lesnik-Oberstein K. *Children's Literature: Criticism and the Fictional Child.* Oxford: Clarendon Press; 1994.
48. Kumar K. *What Is Worth Teaching?* Hyderabad: Orient Longman; 1992.
49. National Council of Educational Research and Training. *Aims of Education: Position Paper, National Focus Group.* New Delhi: NCERT; 2006.
50. National Council of Educational Research and Training. *Teaching of Indian Languages: Position Paper, National Focus Group.* New Delhi: NCERT; 2006.